# पर्यावरण एवं मानवाधिकार के प्रश्न
## हिमालय एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में

**अभिषेक सौरभ**
शोध-छात्र, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू,
नई दिल्ली 110067

**शोध-सारांश**
*जहाँ एक ओर भारतवर्ष में विविधता हम पर्यावरण के पैमानों और भौगोलिक संरचनाओं के आधार पर माप सकते हैं, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से भी भारत विविधताओं में एकता का देश है | व्यावहारिक सन्दर्भों में, हम आमतौर पर मानवाधिकार की संकल्पना को पूर्णतया मानव के निजी अधिकारों की संरक्षा एवं हनन से ही जोड़कर देखने के अभ्यस्त हैं जबकि भारत के पूर्वोत्तर-वासी एवं हिमालय के स्थानीय निवासियों के लिए मानव अधिकार की एक कड़ी पर्यावरणीय अधिकारों से भी नाभि-नालबद्ध है | भारतीय हिमालयी क्षेत्र (Indian Himalayan Region) करीब 13 राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, असम के दो जिलों दीमा हसाओ और कार्बी एंगलोंग तथा पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग और कालिम्पोंग क्षेत्रों तक लगभग 2500 किमी की लंबाई और 250 से 300 किमी की चौड़ाई में फैला हुआ है | पर्वतराज हिमालय के आँचल में बसे राज्यों में पर्यावरण संरक्षण की अक्षुण्णता को बरकरार रखने के लिए पर्वतीय प्रदेश के मूल निवासियों ने कभी भी किसी बाहरी शक्ति से पर्यावरण को क्षति पहुँचा सकने वाला समझौता नहीं किया | अपितु जब भी पर्यावरण-संरक्षण पर खतरे का आभास उन्हें हुआ, हिमालय वासियों ने अपनी जान की कीमत पर खेलकर पर्यावरण को किसी भी तरह के नुकसान होने से बचाया | उत्तराखंड के 'चिपको आन्दोलन' को इस सन्दर्भ में बख़ूबी देखा जा सकता है | उस वक़्त अर्थात 1970 के दशक में अविभाजित उत्तरप्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के पर्वतीय क्षेत्र के किसानों ने कटाई के लिए चिह्नित 'पेड़ों से चिपककर' वन विभाग द्वारा पेड़ों की अव्यावहारिक कटाई के प्रयास का तीव्र विरोध किया था | अपने मूल-कलेवर में 'चिपको आंदोलन' सैकड़ों विकेंद्रित तथा स्थानीय स्वत: स्फूर्त प्रयासों का परिणाम था | दिलचस्प तथ्य यह है कि स्थानीय लोगों ने तब पेड़-पौधों पर अपना पारम्परिक अधिकार जताते हुए, पर्यावरण को अपने जीवन का स्वाभाविक अंग बताया था | यहाँ इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण का अधिकार मानव के अधिकारों से सीधी तौर पर जुड़ जा रहा है |*

**बीज-शब्द**
पर्यावरण, मानव अधिकार, संरक्षण, पूर्वोत्तर भारत, चिपको आन्दोलन, परिवेश, भारतीय हिमालयी क्षेत्र।

भारतवर्ष प्राकृतिक एवं भौगोलिक विविधताओं से परिपूर्ण है | संभवतः जलवायविक एवं पर्यावरणीय प्रतिमानों पर जितनी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ, ऋतू-परिवर्त्तन एवं मौसमी दशाएँ भारत में उपलब्ध हैं, उतनी विविधतापूर्ण भौगोलिक सह पर्यावरणीय स्थिति का दर्शन विश्व के किसी अन्य देश में दुर्लभ ही है | भारत की भौगोलिक संरचना में पर्वतीय क्षेत्र, नदी-घटी, मैदानी भागों, मरुस्थलीय परिवेश, महासागरीय, पठारी, द्वीपीय-प्रायद्वीपीय संरचनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला का समावेश परिलक्षित होता है | साथ ही; इन विविध भौगोलिक निर्मिति के अनुसार आम भारतीयों की जीवन-शैली का भी प्रभावित होना युक्ति-युक्त है | नदी-घाटियों के नजदीक बसी जनसंख्या जहाँ नदियों की उर्वरा-शक्ति से लाभान्वित होती हैं, वहीं यदा-कदा नदियों के साथ प्रवाहित भीषण बाढ़ों से कुप्रभावित भी हो जाती हैं | ऐसे ही देश के मरुस्थलीय भूभागों में जीवन-यापन एक कठिन श्रम की भांति है | मैदानी भागों में

देश की बहुसंख्य आबादी के बसे होने के पीछे वहाँ जीवन-यापन में सुगमता का होना प्रमुख कारण है | यद्यपि स्थानीय स्तर पर जीवन-यापन से जुड़ी सुविधाएँ एवं परेशानियां कमोबेश हर परिवेश की अपनी-अपनी अलग-अलग होती ही हैं, तथापि पर्वतीय क्षेत्रों में सुविधाओं की तुलना में मुश्किलें ज्यादा दृष्टिगोचर होती हैं | भारत के पूर्वोत्तर-प्रान्तों की अधिकांश भौगोलिक संरचना पार्वत्य कोटि की, अत्यधिक वर्षा-युक्त क्षेत्र, संसाधनविहीन एवं दुष्कर परिवहनीय प्रकार की है | हिमालयी राज्यों के सन्दर्भ में भी जीवन-यापन से सम्बद्ध उपरोक्त दुरुहता प्रासंगिक है | जाहिर है ; जिस खास भौगोलिक क्षेत्र में जीवन-यापन की प्रक्रिया अत्यंत कठिन होगी, वहाँ की संसाधनविहीन बहुसंख्यक आबादी के लिए अपने मानव अधिकारों की सुरक्षा कर पाना एवं उच्च मानवीय गरिमा से युक्त जीवन जी पाना हर हाल में संभव नहीं हो पाता होगा ! हमारे पास पड़ोसी हिमालयी देश नेपाल से आने वाले प्रवासी लोगों, विशेषतया प्रवासी मजदूरों का एक उदहारण है, जिसमें आँकड़े बताते हैं कि अधिकांशतया ऐसे नेपाली मजदूर भारत के विभिन्न शहरों, महानगरों या यहाँ तक कि भारतीय ग्रामों में निजी रूप से चौकीदारी या रखवाली करने या कूली (सामान ढ़ोने का कार्य) का कार्य करते हैं | इसके अलावा हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखंड के सेब बागानों में इन नेपाली प्रवासी मजदूरों की एक अच्छी संख्या कार्य करती है | व्यावहारिक रूप से मजदूर-वर्ग, परम्परागत कामगार-वर्ग, सफाईकर्मी, हाशिये के समाज की स्त्रियों, औद्योगिक कारखाना की मजदूरिनों तथा निहायत ही गरीब आमजनों की ; चाहे वो देश के हों या परदेश के, प्रवासी हों या शरणार्थी, मैदानी भागों के हों या पर्वतीय प्रदेशों के ; थोड़े-कम ज्यादा परिमाणों में इनके मानव अधिकारों का हनन बहुत आम बात है | वास्तव में, देखा जाये तो समाज के अंतिम पायदान पर अवस्थित व्यक्ति की मानवीय गरिमा का जिस दिन लोप नहीं होगा, मानव समुदाय उस दिन वास्तविक तरक्की के शिखर पर विराजमान होगा |

**भारत के पूर्वोत्तर-वासी एवं हिमालय के स्थानीय निवासियों के लिए मानव अधिकार की एक कड़ी पर्यावरणीय अधिकारों से भी नाभि-नालबद्ध है।**

मानव अधिकारों के संरक्षण एवं उल्लंघन से जुड़ी हुई एक कटु सच्चाई यह है कि आमतौर पर किसी भी समाज में निचले पायदानों पर कार्यरत या असंगठित आर्थिक क्षेत्रों में कार्यरत मानव समूहों के मानवीय हित सबसे अधिक प्रभावित होते हैं | कभी-कभी विपरीत पर्यावरणीय दशाओं के कारण बेहतर मानवीय सुविधाओं एवं स्थिर जीवन की तलाश में कई पूर्वोत्तर प्रान्तों एवं हिमालयी क्षेत्रों से प्रमुख भारतीय महानगरों, शहरों, औद्योगिक नगरियों एवं राजधानियों की तरफ पलायन करने वाली एक बहुसंख्यक आबादी कतिपय मामलों में अपने मानव अधिकारों के उल्लंघन का दंश झेलने को अभिशप्त हो जाती हैं | भारतीय संविधान जहाँ एक ओर मानव-मात्र एवं समस्त भारतीय नागरिकों की समानता एवं उनके मानवाधिकारों के संरक्षण का सन्देश देती है, वहीं देश की राजधानी दिल्ली में ही कई बार पूर्वोत्तर भारत के लोगों के प्रति नस्लीय टीका-टिपण्णी या छींटाकशी के अमानवीय दृष्टान्त बुरे सपने की मानिंद उभर कर पटल पर आ विराजती है | अन्य हिमालयी क्षेत्रों से आने वाले लोगों को भी कद-काठी एवं रूप-रंग के आधार पर सामाजिक भेदभाव या अवांछित टीका-टिपण्णी का सामना करना पड़ता है | पूर्वोत्तर भारत एवं पर्वतीय क्षेत्रों के लोगों के प्रति नस्लीय आधार पर होने वाला यह दुर्व्यवहार देश के अन्य हिस्सों में भी व्याप्त है और यह हमारे लिए सामाजिक शर्म के समान है | देश के दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों से बेहतर जीवन-यापन एवं रोजगार की खोज में महानगरों की शरण में आये पूर्वोत्तर भारत और हिमालयी राज्यों के ये भारतवासी बहुधा असंगठित या फूटकल क्षेत्रों में ही कार्य करते हुए पाये जाते हैं | व्यापार करने के लिए अच्छी पूँजी के अभाव में ये ठेले-खोंमचे वाले या फूटकर रेहड़ी वाले बनकर महानगरों में गुजारा करते हैं | जाहिर है कि अपने मूलस्थान से पलायन करने के बावजूद भी इनकी मानवीय सह आर्थिक दशा में अपेक्षित बदलाव संभव नहीं हो पाता है |

जहाँ एक ओर भारतवर्ष में विविधता हम पर्यावरण के पैमानों और भौगोलिक संरचनाओं के आधार पर माप सकते हैं, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से भी भारत विविधताओं में एकता का देश है | व्यावहारिक सन्दर्भों में, हम आमतौर पर मानवाधिकार की संकल्पना को पूर्णतया मानव के निजी अधिकारों की संरक्षा एवं हनन से ही जोड़कर देखने के अभ्यस्त हैं जबकि भारत के पूर्वोत्तर-वासी एवं हिमालय के स्थानीय निवासियों के लिए मानव अधिकार की एक कड़ी पर्यावरणीय अधिकारों से भी नाभि-नालबद्ध है | पर्वतराज हिमालय के आँचल में बसे राज्यों में पर्यावरण संरक्षण की अक्षुण्णता को बरकरार रखने के लिए पर्वतीय प्रदेश के मूल निवासियों ने कभी भी किसी बाहरी शक्ति से पर्यावरण को क्षति पहुँचा सकने वाला समझौता नहीं किया | अपितु जब भी पर्यावरण-संरक्षण पर खतरे का आभास उन्हें हुआ, हिमालय वासियों ने अपनी जान की कीमत पर खेलकर पर्यावरण को किसी भी तरह के नुकसान होने से बचाया | उत्तराखंड के 'चिपको आन्दोलन' को इस सन्दर्भ में बख़ूबी देखा जा सकता है | उस वक़्त अर्थात 1970 के दशक में अविभाजित उत्तरप्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के पर्वतीय क्षेत्र

के किसानों ने वन विभाग द्वारा पेड़ों की अव्यावहारिक कटाई का तीव्र विरोध किया था | 26 मार्च, 1974 को पेड़ों की कटाई रोकने के लिए 'चिपको आंदोलन' शुरू हुआ | उस साल जब वर्तमान उत्तराखंड के चमोली जिले में रैंणी गाँव के जंगल के लगभग ढाई हज़ार पेड़ों को काटने की नीलामी हुई, तो गौरा देवी नामक महिला ने अन्य महिलाओं के साथ इस नीलामी का विरोध किया | इसके बावजूद सरकार और ठेकेदार के निर्णय में बदलाव नहीं आ पाया | जब ठेकेदार के आदमी पेड़ काटने पहुँचे, तो गौरा देवी और उनकी 21 साथियों ने उन लोगों को अपने स्तर पर समझाने की अंतहीन कोशिश की | जब उन्होंने पेड़ काटने की जिद किसी भी सुरत में नहीं त्यागी तो महिलाओं के समूह ने पेड़ों से चिपक कर उन्हें ललकारा कि पहले हमें काटो फिर इन पेड़ों को भी काट लेना | अंततः ठेकेदार को बिना वृक्षों की कटाई के वापस जाना पड़ा | बाद में स्थानीय वन विभाग के अधिकारियों के सामने इन महिलाओं ने अपनी बात पुनः रखी | फलस्वरूप रैंणी गाँव का जंगल नहीं काटा गया | इस प्रकार यहीं से चिपको आंदोलन की शुरुआत हुई | सबसे दिलचस्प बात यह है कि स्थानीय लोगों ने तब पेड़-पौधों पर अपना पारम्परिक अधिकार जताते हुए, पर्यावरण को अपने जीवन का स्वाभाविक अंग बताया था | यहाँ इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण का अधिकार मानव के अधिकारों से सीधी तौर पर जुड़ जा रहा है | अपने मूल-कलेवर में 'चिपको आंदोलन' सैकड़ों विकेंद्रित तथा स्थानीय स्वत: स्फूर्त प्रयासों का परिणाम था | इस आंदोलन के पथ-प्रदर्शक एवं कर्त्ता-धर्त्ता सुन्दर लाल बहुगुणा और मुख्यत: ग्रामीण महिलाएँ थीं, जो अपने जीवनयापन के साधन व पर्वतीय समुदाय को बचाने के लिए तत्पर थीं | पर्यावरणीय विनाश के ख़िलाफ़ शांतिपूर्ण अहिंसक विरोध प्रदर्शन इस आंदोलन की अद्वितीय विशेषता रही |

**पर्यावरण का अधिकार मानव के अधिकारों से सीधी तौर पर जुड़ जा रहा है। अपने मूल-कलेवर में 'चिपको आंदोलन' सैकड़ों विकेंद्रित तथा स्थानीय स्वत: स्फूर्त प्रयासों का परिणाम था | इस आंदोलन के पथ-प्रदर्शक एवं कर्त्ता-धर्त्ता सुन्दर लाल बहुगुणा और मुख्यत: ग्रामीण महिलाएँ थीं, जो अपने जीवनयापन के साधन व पर्वतीय समुदाय को बचाने के लिए तत्पर थीं। पर्यावरणीय विनाश के ख़िलाफ़ शांतिपूर्ण अहिंसक विरोध प्रदर्शन इस आंदोलन की अद्वितीय विशेषता रही।**

हम देखते हैं कि कई हिमालयी प्रदेशों के भिन्न-भिन्न हिस्सों में आज भी लोग बुनियादी जरूरतों से वंचित हैं और आधारभूत मानव अधिकारों की बहाली के लिए गुहार लगा रहे हैं | नवम्बर, 2015 में एक दैनिक अख़बार-पत्र में छपी एक ख़बर के अनुसार, "उच्च हिमालयी क्षेत्र नामिक के लोगों ने राज्य मानवाधिकार आयोग के सामने आधारभूत मानव अधिकारों की बहाली करने से संबंधित प्रार्थना पत्र आयोग के अध्यक्ष को दिया | कहा है कि सड़क मार्ग से 27 किमी की दूरी पर नामिक और हीरामणि ग्लेशियर की तलहटी में बसे नामिक गांव सड़क से वंचित है | संचार सुविधा के नाम पर अक्सर खराब रहने वाला एक सेटेलाइट फोन मात्र है |" यह नामिक गाँव उत्तराखंड राज्य के अंतर्गत् प्रशासित है | गौरतलब है कि आज भी हिमालयी एवं पूर्वोत्तर के कई राज्यों में ऐसे अन्य मुद्दे बहुत आसानी से मिल जायेंगे, जिनमें कि आम लोगों के मानव अधिकार प्रभावित हो रहे हैं |

जब हम हिमालयी क्षेत्र की भौगोलिक एवं राजनीतिक-प्रशासनिक सीमाओं को खँगालते हैं, तब भारतीय शीर्ष सलाहकारी निकायों में से एक 'नीति आयोग' द्वारा भारतीय हिमालयी क्षेत्र (Indian Himalayan Region) के निर्धारण को समीचीन पाते हैं| भारतीय गणराज्य के अंतर्गत हिमालयी क्षेत्र-निर्धारण की महती आवश्यकता इसलिए भी है ताकि उन क्षेत्रों की जाँच-पड़ताल कर, मूलभूत सुविधाओं एवं परिवहनीय संसाधनों से वंचित क्षेत्रों को चिन्हित कर उनका समुचित एवं केन्द्रित विकास किया जा सके | इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाकर उनके आधारभूत मानव अधिकारों की बहाली संभव की जा सके | नीति आयोग के अनुसार, "भारतीय हिमालयी क्षेत्र (Indian Himalayan Region) करीब 13 राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, असम के दो जिलों दीमा हसाओ और कार्बी एंगलोंग तथा पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग और कालिम्पोंग क्षेत्रों तक लगभग 2500 किमी की लंबाई और 250 से 300 किमी की चौड़ाई में फैला हुआ है | अकेले भारतीय हिमालयी क्षेत्र (Indian Himalayan Region) में लगभग पचास मिलियन लोग स्थायी तौर पर निवास करते हैं | भारतीय लोकतांत्रिक गणराज्य के अंतर्गत् आने वाले हिमालयी क्षेत्र विविध जनसांख्यिकीय, आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक और राजनीतिक प्रणालियों द्वारा

अभिलक्षित है | 2017 में, भारत सरकार की सलाहकार थिंक टैंक निकाय 'नीति आयोग' द्वारा विषयगत क्षेत्रों में से प्रत्येक पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए भारतीय हिमालयी क्षेत्र (आईएचआर) के पर्वतों में संधारणीय विकास के लिए समूहों के संयोजक के रूप में नेतृत्वकारी संस्थानों के साथ पाँच कार्यदलों का गठन किया गया है | इन विषयगत कार्य समूहों में- 'जल सुरक्षा के लिए हिमालय में झरनों की संख्या और पुनरुद्धार, भारतीय हिमालयी क्षेत्र में संधारणीय पर्यटन, स्थानान्तरण कृषि : परिवर्तनशील दृष्टिकोण की ओर, हिमालय में कौशल और उद्यमिता (ई एंड एस) परिदृश्य को सुदृढ़ करना, सूविचारित निर्णय लेने के लिए डेटा / सूचना' शामिल हैं | ध्यान देने योग्य तथ्य है कि उपरोक्त पांच विषयगत कार्य समूह रिपोर्टों की सिफारिशों के आधार पर 9 नवंबर, 2018 को नीति आयोग ने भारतीय हिमालयी क्षेत्र में संधारणीय विकास के लिए 'हिमालयी राज्य क्षेत्रीय परिषद' का गठन किया है | आशा की जा सकती है, सरकारी स्तर पर किये जा रहे इन महत्वपूर्ण कवायदों से हिमालयी एवं पूर्वोत्तर भारत के आम जन-जीवन में अपेक्षित सकारात्मक बदलाव आ पायेंगे, जिसकी बदौलत इन क्षेत्रों में निवास कर रही विशाल जनसंख्या के जीवन-यापन के स्तर में भी मूलभूत परिवर्तन आ सकेगी और उनके आधारभूत मानव अधिकारों की प्रतिपूर्ति होने के साथ-साथ गरिमामय जीवन जीने के उनके मूल अधिकारों की रक्षा हो पायेगी |

यद्यपि, इस आलेख में पर्यावरण के सन्दर्भ में आम मानव के मानवाधिकारों को हम सिर्फ हिमालयी राज्यों या पूर्वोत्तर के क्षेत्रों तक ही सीमित रख कर देख रहे हैं, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण तो प्राणिमात्र का हक़ है | स्वच्छ पर्यावरण, मनुष्य के स्वस्थ रह सकने के लिए अपरिहार्य है | प्रत्येक मनुष्य प्राणदायिनी स्वच्छ वायु का सेवन पर्यावरण से ही कर पाता है और बिना ऑक्सीजन के तो मानव सभ्यता एक पग कदम आगे नहीं बढ़ा सकती है | निस्संदेह स्वच्छ पर्यावरण के तत्त्व जैसे शुद्ध प्राणवायु, शुद्ध जल हमें जीवन प्रदान करते हैं और जीवन का अधिकार तो मानव मात्र का सबसे अव्वल और बुनियादी अधिकार है | अभी बीते वर्ष 2018-19 के आँकड़ों के अनुसार ही देखें तो विश्व के कई महानगरों में पिछले साल वायु प्रदुषण का स्तर इतना ख़तरनाक हो गया था कि हवाओं में जहर सा घुल चुका था | भारत में भी गाजियाबाद, दिल्ली, नोएडा, धनबाद, गुड़गाँव, पटना, चेन्नई, अम्बाला आदि शहरों में लोग अत्यधिक वायु प्रदुषण एवं हवाओं में PM 2.5 कणों के घुले होने के कारण घरों से बाहर नहीं निकल पा रहे थे | लेकिन यह भी एक सच है कि पृथ्वी पर पर्यावरण-प्रदुषण से जुड़े ये संकट हमेशा से विद्यमान नहीं थे और यदि अब भी मानव-समुदाय जागरूक होकर जिम्मेदारीपूर्वक प्रयत्न करें तो हरेक प्रकार के पर्यावरण प्रदुषण से सफलतापूर्वक निबटा जा सकता है |

परम्परागत रूप से भारतीय समाज में आस्था और विश्वास का विशेष स्थान रहा है और इस आस्था के केंद्र का एक बिंदु देवी-देवताओं की पूजा से अलग प्राकृतिक संसाधनों जैसे पेड़-पौधों, जन्तुओं, नदियों आदि को भी पूजनीय मानकर चलायमान रहा है | पादपों में पीपल, आंवला, तुलसी, वटवृक्ष आदि, जन्तुओं में गाय, बैल, मयूर, हिरण, शावक आदि तथा नदियों में गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी इत्यादि को मानवीय श्रद्धा का सान्निध्य अनवरत मिलता रहा है | इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक परम्परा में पर्यावरण-संरक्षण की भावना पहले से निहित जरुर रही है | प्राचीन काल में भारत में प्रकृति को किसी भी प्रकार की क्षति जान-बूझकर नहीं पहुँचाई जाती थी, यहाँ तक कि संध्या ढ़लने के बाद वृक्षों से पत्तियों तक को भी नहीं तोड़े जाने की मान्यता थी, इसलिये तब पर्यावरण संरक्षण के लिये किसी विशेष कानून की आवश्यकता नहीं थी | लेकिन आधुनिक काल में औद्योगिक क्रांति, मशीनीकरण एवं तकनीकों के सहारे अन्धाधुन्ध विकास के नाम पर पेड़-पौधों की बेतहाशा कटाई होने, कारखानों के कचरों से नदियों एवं जल-स्रोतों का संकरा होकर सूखते चले जाने तथा जानवरों-पक्षियों के प्राकृतिक निवास के लगातार नष्ट होकर उनके अस्तित्व के समक्ष संकट उत्पन्न हो जाने से मानव-जाति के समक्ष जल-प्रदुषण, वायु-प्रदुषण, ध्वनि-प्रदुषण आदि का गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है, जिसके फलस्वरूप पिछली सदी से पर्यावरण के संरक्षण के लिये बड़ी संख्या में कानून बनाए जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है | इन्हीं कारणों से पिछले सौ वर्षों के दौरान राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण से सम्बंधित कई कानून बनाये गये हैं | स्वाधीनता प्राप्ति के आलोक में, बीसवीं सदी के मध्य-वर्षों में रचित भारत के संविधान में भी कुछ इस तरह के प्रावधान किये गये हैं, जिससे पर्यावरण का अधिकार मानव अधिकारों की अनुषंगी इकाई के रूप में परिभाषित होता है | भारतीय उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्र के अनुसार, "प्रदूषण और भूमंडलीय समस्याएँ संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत आती हैं | यदि यह सत्य है तो पर्यावरण का मामला स्पष्ट रुप से मानवाधिकार में आता है |" ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इसी आधार पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने पश्चिम बंगाल में आर्सेनिक से पानी के प्रदूषित होने के प्रकरण में सकारात्मक हस्तक्षेप भी किया था |

नृजातीय आकलनों के आधार पर गौर करें तो पूर्वोत्तर भारतीय राज्यों की अधिकांश आबादी भारतीय संविधान के अंतर्गत् अधिसूचित अनुसूचित जनजातियों की है | हिमालयी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड आदि की जनसंख्या में भी एक बड़ी हिस्सेदारी अनुसूचित जनजातियों की है | सबसे दिलचस्प बात यह है कि अनुसूचित जनजातियाँ अपनी धार्मिक प्रवृत्ति में मुख्य रूप से

प्रकृतिपूजक हैं | जब हम अनुसूचित जनजातियों की पूजा-पद्धति पर गौर करते हैं तब पाते हैं कि उनके देवी-देवता या पूज्य बहुतायत में पहाड़, पेड़-पौधे, सूर्य, चंद्रमा, जल-स्रोत, धार्मिक रूप से संरक्षित लघु वन, पक्षी या पत्थर होते हैं | उदहारण के लिए, अरुणाचल प्रदेश की कुल आबादी की 27 प्रतिशत जनसंख्या सूरज और चाँद (डोनी-पोलो) की पूजा करते हैं | इसके अतिरिक्त यहाँ की एक बड़ी जनजातीय आबादी जिसने कालांतर में हिन्दू जीवन-पद्धति या ईसाइयत अपना ली, उनमें से अधिकांश अभी भी अपने मूल कलेवर में प्रकृति-पूजक ही हैं | यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष के अधिकांश भागों में चाहे वो उत्तर भारत के क्षेत्र हों या दक्षिण भारत के भूभाग हों, एक बहुत बड़ी आबादी इन समूचे परिवेशों की निवासी अपने विभिन्न लोक-पर्वों एवं त्योहारों में नदियों, भूमियों, सूरज, चाँद आदि के हवाले से प्रकृति की पूजा-आराधना करती हैं और अनिवार्यत: किसी-न-किसी रूप में उनके जीवनदायिनी शक्तियों के प्रति आभार व्यक्त करती हैं | निरपेक्ष भाव से आज भी आदिम जनजातियों या अनुसूचित जनजातियों की आधी से अधिक आबादी की जीवन-शैली विश्वभर में प्रकृति के सान्निध्य में गुजारा करने की ही है, प्रकृति के दोहन की बजाय प्रकृति से उतना ही ग्रहण करने की है जितने में उनकी आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं की भी पूर्ति हो जाये और प्रकृति भी सतत रूप से संरक्षित रहे | भारत के वर्तमान उप-राष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू ने एक अवसर पर पर्यावरण के सतत संरक्षण के साथ विकास की अवधारणा को बल देने के लिए जनजातीय समुदायों से सीखने की अपील की है | राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना दिवस के अवसर पर वर्ष 2019 की 19 फ़रवरी को माननीय उपराष्ट्रपति महोदय ने अपने संबोधन में कहा, "आज जब हम प्रकृति सम्मत स्थाई विकास के रास्ते खोज रहे हैं, ये समुदाय हमें पर्यावरण सम्मत विकास के कई गुर सिखा सकते हैं | ...मुझे प्रयाग कुम्भ के अवसर पर किवा कुम्भ में सम्मिलित होने का अवसर मिला | विश्व के लगभग पचास देशों के जनजातीय समुदाय के नेताओं से पर्यावरण एवं प्रकृति सम्मत विकास पद्धति पर विमर्श करने का अवसर मिला | मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार से विश्व भर के जनजातीय समुदाय, प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए तत्पर हैं | किस प्रकार हमारे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आधारित आर्थिक चिंतन के विकल्प के रूप में उनके पारम्परिक विकास की पद्धति, उनकी प्राकृतिक तकनीकें प्रकृति सम्मत हैं |" हिंदी के वरिष्ठ कवि लीलाधर मंडलोई रचित एक कविता में, एक पहाड़ी माँ जिसकी सारी उम्र पर्यावरण के बहुत समीप रहते हुए गुजरी है, शहर जाकर बसने वाले अपने बेटे को प्रकृति की ममतामयी सौगात भेंट करने के लहजे में कहती हैं,"माँ कहती हैं चल नहीं सकती अब थोड़ा भी / जा बेटा, ले जा थोड़ी-सी चांदनी / मेरे हिस्से की हवा, बादल, हँसी और धीरज कि / लौट सके कुछ तो मेरे पहाड़ में / झरे हुए पत्तों का हरा समय / बाँसुरी लायक बाँस के झुरमुट( मगर एक आवाज़)"| एक माँ जननी होती है जो जन्म देती है और एक माँ प्रकृति भी होती है, जो प्राणिमात्र के पालन-पोषण के लिए आवश्यक पञ्च-तत्वों को प्रदान करती हुई जीवन के अधिकार से सुशोभित करती है | इसलिए पर्यावरण का अधिकार और मानव अधिकार सहोदर माता एवं संतान के संबंधों की भांति एक दूसरे से नाभि-नालबद्ध हैं |

**सन्दर्भ सूची :**

**अंतर्जालीय सन्दर्भ :**


1. चिपको आन्दोलन, साभार- Wikkipedia, वेब लिंक- https://en.wikipedia.org/wiki/Chipkomovement
2. अमर उजाला (दैनिक अख़बार), पिथौरागढ़, 18 नवम्बर, 2015,वेबलिंक- https://www.amarujala.com/uttarakhand/pithoragarh/human-rights-commission-chairman-justiceuttarakhand-hindi-news
3. मिश्र, आर.सी., पर्यावरण के लिये कानूनी संरक्षण (Legal protection for environment) (आलेख) ; वेब लिंक- https://hindi.indiawaterportal.org/content/parayaavarana-kae-laiyae-kaanauunai-sanrakasana-legal-protection-environment/content-type-page/55761
4. जनजातीय समुदायों से सीखे पर्यावरण सम्मत विकास: उपराष्ट्रपति ; साभार- प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो, नई दिल्ली, वेब लिंक https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1565165
5. मंडलोई, लीलाधर, मेरी उम्र बयालिस के आगे की परछाईं है (कविता-शीर्षक) ; वेब लिंक- http://kavitakosh.org/